R.N.I.- UPHIN/2001/3996
ISSN- 2581-6128

स्थापन दिवस के 22वें वर्ष में प्रवेश

संयम - संस्कार - संतुलन

शहर समता

(हिंदी साप्ताहिक)

शोध पत्र

'कर्मक्षेत्र रणभूमि यही है, मानव हो तुम कर्म करो।
कर्म से कभी विमुख न रहना, मन में यह संकल्प करो।'
–उमेश श्रीवास्तव

संस्थापकः स्व० कन्हैया लाल, स्व० श्रीमती साधना श्रीवास्तव
सम्पादकः उमेश चन्द्र श्रीवास्तव

नीता शर्मा पर विशेषांक

वर्ष 23 | अंक 48 | रविवार, इलाहाबाद, 28 अप्रैल 2024 | पृष्ठ 4 | विशेषांक मूल्यः 3 रू0

संपादकीय

इस बार नीता शर्मा

विधाता ने नारी को पूजनीय बनाया,
भिन्न भिन्न रंग रूप दे उसको सजाया।
'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवता',
मनुस्मृति में है ये पाठ पढ़ाया।
लक्ष्मी, गौरी, काली ,
सरस्वती बनी जो ,
कर असुरों का संहार
दुर्गा नाम है पाया।

नारी शक्ति का विविध पूर्ण चित्रण के माध्यम से कवियत्री नीता शर्मा ने नारी शक्ति के प्रति जो अनुराग संप्रेषित किया है वह सराहनीय है। कवियत्री नीता शर्मा सुदृढ़ हृदय की सुलझी हुई रचनाकार है। उनकी रचनात्मक क्षमता में सीधी बातें सुस्पष्ट शब्दों के माध्यम से व्यक्त होती हैं। जम्मू-कश्मीर राज्य के छोटे से जिले उधमपुर में जन्मी, पली,पढ़ी लेकिन विवाह के बाद मेघालय की राजधानी शिलांग में रच बस गई हैं। यहीं से नीता शर्मा की साहित्यिक सेवा अनवरत जारी है। गद्य-पद्य दोनों विधाओं की कुशल रचनाकार नीता शर्मा पर सावित्री देवी स्मृति सम्मान देते हुए हर्ष एवं प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

बानगी देखिए

भीड़ लगी बाजारों में सामान बिक रहा है,
उम्मीद बिक रही है लाचारी बिक रही है,
गरीबी में गरीबों का अरमान बिक रहा है।
लहू बिक रहा है,
पानी बिक रहा है,
आंखे, किडनी, दिल
और प्राण बिक रहा है।

दूसरी बानगी

छाया पतझड़,
वीरान हो गए वन-उपवन,
सुखी डालियों को पकड़े,
खड़े ठूंठ से पेड़,
भरे निराशा मन में,
ताकते एक दूसरे को,
उद्विग्न, निर्वस्त्र से।।

तीसरी बानगी

मिले थे जब हम तुम ,
तिफ्ली थी तुम्हारी,
मेरा बचपन था,
न कोई फ़िक्र थी, न रंजो गम था।

अनुराग प्यार और इकरार से लबरेज नीता शर्मा पर प्रकाशित यह सावित्री देवी स्मृति सम्मान अंक पढ़िए और बताइए की कवियत्री नीता शर्मा अपनी रचना धर्मिता को लेकर साहित्य के किस मुकाम पर खड़ी है। प्रतिक्रिया जरूर दीजिये।

अंत में -

गगन धरती सब तलाशा ,
रचना में सब आशा-आशा।
बिरले होते हैं जो जीवन की ,
धार-हार अभिलाषा लिखते ।

उमेश श्रीवास्तव

मेरा आत्मसंघर्ष

'चलता रहूँगा पथ पर,
चलने में माहिर बन जाऊँगा,
या तो मंजिल मिल जायेगी, या
अच्छा मुसाफ़िर बन जाऊँगा।'

मैं नहीं जानती उक्त पंक्तियाँ किसके द्वारा लिखी गई हैं, परंतु मैं इन पंक्तियों को अपने जीवन से जुड़ा हुआ महसूस करती हूं। जीवन और संघर्ष एक दूसरे को प्रतिबिंबित करते हैं। मानव अवतार में जब ईश्वर ने ही राम और कृष्ण बनकर पूरा जीवन संघर्ष में बिताया तो हम तुच्छ प्राणियों की क्या बिसात की बिना संघर्ष के जीवन जी लें।
जम्मू कश्मीर राज्य (अब केंद्र शासित प्रदेश बन चुका है) के छोटे से जिले उधमपुर में मेरा जन्म हुआ। वहाँ से ही मैंने प्राथमिक शिक्षा केंद्रीय विद्यालय में और उच्च शिक्षा गवर्नमेंट स्कूल, कॉलेज और जम्मू विश्वविद्यालय में प्राप्त की। चूंकि मैं एक मध्यमवर्गीय परिवार से थी और हम चार भाई-बहन थे। पिता सरकारी नौकरी में थे और माँ एक कुशल गृहणी। शिक्षा प्राप्ति के लिए सदा ही माता-पिता ने हमको बढ़ते और पढ़ते रहने को अग्रसर किया। जिसका नतीजा आज हम चारों भाई- बहन देख पा रहे है। माता पिता की कड़ी मेहनत और उनके दिए गए संस्कार ही हैं जो आज मैं ये लिखकर बता पाने में सक्षम हूँ। शत शत नमन मेरे माता पिता को।
जम्मू यूनिवर्सिटी से बी लिब (बैचलर इन लाइब्रेरी साइंस) की डिग्री प्राप्त कर मैं वापिस उधमपुर चली गई। इस बीच मैंने स्कूलों में लगभग पंद्रह वर्ष तक शिक्षिका का कार्य किया। हिंदी मेरा बचपन से सर्वप्रिय विषय था इसलिए मुझे हिंदी पढ़ना और पढ़ाना अच्छा लगता था। लाइब्रेरियन के कार्य के दौरान मैं अक्सर किताबें पढ़ती और लिखने का सोचती। कभी कभार कुछ शब्द डायरी पर लिख देती और बार-बार उसको पढ़ती। इन वर्षों के दौरान ही मैंने जम्मू यूनिवर्सिटी के दूरस्थ शिक्षा (डिस्टेंस एजुकेशन) विभाग के सौजन्य से एम ए हिंदी और बी एड की डिग्री प्राप्त कर ली। १९९५ में विवाह हो जाने से मैं मेघालय की राजधानी शिलांग आ गई। पति शिलांग में ही कार्यरत थे और मेरे ससुर भी एक प्राइवेट विद्यालय के प्रधानाचार्य थे तो दोनों को ही घर लौटते। सारा दिन घर में अकेले रह मैं जब बोर हो जाती तो कुछ लिखने का ख्याल आता। अपने अंदर के अकेलपन से उङ्गती उदासी और मायूसी के भावों को कलम द्वारा उकेरने की कोशिश करती पर ङ्गीक से लिख न पाती। उसके बाद जल्द ही मेरे परिवार में दो देवियों का आगमन हो गया और मैं अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में इतनी व्यस्त हो गई की कैसे दिन निकलता कैसे रात होती पता ही न चलता। अब तो उनके स्कूल के कार्यों को पूरा करवाने, पढ़ाने लिखाने के लिए ही पेंसिल, पेन हाथ में आता। अपने लिए तो वक्त ही नहीं न मिलता कुछ लिखने का और मेरी लिखने की सोच और शक्ति पूर्णतया धूमिल हो गई।
बीच में कभी आकाशवाणी से बुलावा मिल जाता किसी रिकॉर्डिंग आदि के लिए तो ही लिखकर बोल देती। आकाशवाणी की पूर्वोत्तर सेवा, शिलोंग जिसमें आज मैं बतौर हिंदी उद्‌घोषिका कार्यरत हूं वहां मुझे ले जाने का श्रेय मैं आदरणीय अकेला भाई को दूंगी। क्योंकि याद नहीं मेरी उनसे कब और कैसे मुलाकात हुई थी परंतु मुझे आकाशवाणी में १९९६-९७ में सबसे पहले रिकॉर्डिंग उन्होंने ही दी थी। फिर बच्चों की परवरिश से व्यस्तता बढ़ गई और लगभग दस वर्ष तक मैं वहां दोबारा जा ही न सकी। जब बच्चियाँ कुछ बढ़ी और समझदार हो गई और मुझे भी कुछ फुरसत के पल मिलने लगे तो मैंने लिखने के शौक को दोबारा आजमाना शुरू किया। लेकिन इस बात को छिपाऊंगी नहीं की अक्सर जब मैं पारिवारिक समस्याओं में उलझ जाती या घर पर किसी से कोई मनमुटाव हो जाता और मन भीतर से टूट जाता और अंतरद्वंद से जूझने लगती। मन की पीड़ा को किसी से साझा नहीं कर पाती तब घर के बरामदे के कोने में बैङ्कर डायरी में लिखकर मन का सारा गुबार निकाल देती। लिखकर कभी वापिस नहीं पढ़ा वो सब मैंने। कुछ इस तरह शुरू हुआ मेरे लिखने का सफ़र। इस बीच एक एक करके पांच छः लंबी

शेष पृष्ठ ३ पर...

कर्मक्षेत्र रणभूमि यही है, मानव हो तुम कर्म करो।
कर्म से कभी विमुख न रहना,मन में यह संकल्प करो।।
उमेश श्रीवास्तव
R. N. I. UPHIN/2001/3996

शहर समता विचार मंच
(शहर समता अखबार द्वारा संचालित)
289/238 ए(अनंत भवन) कर्नलगंज इलाहाबाद 211002

महिला काव्यगोष्ठी

सम्मान पत्र

सावित्री देवी स्मृति सम्मान
मार्च माह

.....शिलांग..... इकाई की जिलाध्यक्ष आदरणीया.....नीता शर्मा.....
को.....मार्च..... माह का सावित्री देवी स्मृति साहित्य सम्मान 2024 से सम्मानित किया जाता है।
शहर समता आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है ।

राष्ट्रीय अध्यक्ष
महिला काव्यगोष्ठी
रचना सक्सेना
प्रयागराज

राष्ट्रीय महासचिव
महिला काव्यगोष्ठी
सुमन ढींगरा दुग्गल
प्रयागराज

सचिव एवं संपादक
शहर समता विचार मंच
उमेश श्रीवास्तव
प्रयागराज

नीता शर्मा की कविताएं

कल

उस कल की तलाश में हूं,
जिस कल में,
न जाने क्या-क्या करना है।
कल ये करूंगी,
कल वो करूंगी,
कितने काम हैं करने को,
कितनी ख्वाहिशें हैं,
पूरी करने को।
कल,
पंछी सम उड़ूंगी,
झरनों सम शोर मचाऊंगी,
भागूंगी सरसों के खेतों में,
नदी के बहाव सी बहती जाऊंगी।
चढ़ूंगी पहाड़ों की ऊंची चोटियों पर,
रेतीली मरूभूमि पर दौड़ लगाऊंगी,
खेलूंगी समंदर की लहरों से,
किनारों पर,
पैरों के निशान छोड़ आऊंगी।
झूलूंगी पेड़ों की डाल में झूला लगा,
चोरी करके पेड़ों से,
कच्चे आम तोड़ लाऊंगी,
जिऊंगी अपना बचपन दोबारा,
बरसात के पानी में,
कागज़ की नाव बहाऊंगी।
उस कल की तलाश में हूं,
जिस कल में,
न जाने क्या-क्या करना है,
नहीं मिलता वो कल,
वो कल तो आज बन जाता है,
अनगिनत चाहतों को समेटे,
रोज सूरज उगता है,
रोज़ ढल जाता है,
और मेरा वो कल,
फिर कहीं खो जाता है।
कब आएगा वो कल?
कब पकड़ूंगी उसको?
नहीं जानती की वो आएगा,
क्योंकि,
क्या पता कल जिऊंगी?
या मरूंगी?
फिर भी सोचती हूं,
ये करूंगी,
वो करूंगी,
पर,
कल करूंगी,
कल करूंगी।।

गुज़रा वो ज़माना

चलो आज गुज़रे दिनों को याद करते हैं,
खट्टी मीठी बचपन की यादों को,
फिर से आबाद करते हैं।
याद आता है हरदम वो बचपन सुहाना,
रेत के ढेरों पे वो घरौंदे बनाना,
छुपन छुपाई खेलते सबका,
एक साथ, एक ही जगह पर छुप जाना।
गुड्डे गुड्डी का मिलकर ब्याह रचाना,
छोटी सी बात न मानने से,
आपस में कड्डी हो जाना,
नाराज़गी जताने की खातिर,
एक दूसरे के कान में झूझ़ मूझ़
फुसफुसाना।
आम, नीम, बरगद के पेड़ों पर वो झूले
लगाना,
रामायण, महाभारत देखने,
लोगों का एक दूसरे के घर आना जाना।
उन दिनों,
मुहल्ले का हर व्यक्ति रिश्तेदार,
हर बच्चा भाई बहन सा होता था,
न घरों को बांटने वाली दीवारें थी,
सारा मौहल्ला खुले छतों पर बिस्तर लगा,
चैन की नींद सोता था।
दो कमरों का मकान घर कहलाता था,
एक ही कंबल में बैठ़ मूंगफली खाने का,
अलग ही मज़ा आता था।
छुट्टियों में रिश्तेदारों के घर जाना
अधिकार होता था,
'अतिथि देवो भव '
उन दिनों साकार होता था।
अंगीठ़ी पर बनी मां के हाथ की रोटी का,
कितना मीठ़ा स्वाद आता था,
पिता की कमाई से सारा घर,
खुशियों से आबाद होता था।
घर में बड़े बुजुर्गों का होना
बहुत भाता था,
होली, दिवाली त्यौहारों को,
परिवार एक साथ मिलकर मनाता था।
राखी के धागे कच्चे,
मगर रिश्ते पक्के होते थे,
बिना जमीन जयदादों के बंटवारे के,
सब एक साथ,
सुखदुख के सांझेदार होते थे।
कितना सुहाना वो बचपन का दौर था,
न पैसा कमाने की मारामारी थी,
न एक दूसरे से आगे निकलने की होड़,
न भागती दौड़ती जिंदगी का कोई शोर
था।
न बड़े ख्वाब थे न बड़ी ख्वाहिशें,
न ही किसी से वैर भाव था न ही कोई
रंजिशे।
कहां खो गया समय वो सुहाना,
बहुत याद आता है वो गुज़रा जमाना।
यूं तो बहुत कुछ खोया बहुत कुछ पाया
है,
पर आज तक बचपन सा मजा फिर न
आया है।
अब तो बचपन भी अजीब हो गया है,
मोबाइल, वीडियो गेम्स और
टीवी में बालपन न जाने कहां खो गया है।
काश एक बार फिर से जिंदगी का पहिया
वापिस घूम जाए,
मुझे मेरे बचपन से एक बार फिर से
मिलवाए।
उन सभी यादों को एक बार फिर से जीना
चाहूंगी,
इसी बहाने बिछड़ गए हैं जो अपने,
उनसे एक बार फिर मिलूंगी,
मगर,
वापिस इस दौर में फिर न लौटना चाहूंगी,
अपने संगी साथियों के साथ उसी दुनिया
में बस जाऊंगी।
सच वापिस लौट के न आऊंगी,
वापिस लौट के न आऊंगी।।

काश तुम मिले न होते

उम्र के इस दौर में आकर मिले हो तुम,
छीन लिया है अमन और चैन मेरा,
इस तरह बन गए हो हिस्सा जिंदगी का,
लूट ली है नींद रातों की,
दिन का सुकून मेरा।
न मिलो तुम तो खलिश होती है दिल में ,
जादू कर दिया है यूं तुमने,
इश्क हो गया है शायद,
हां, इश्क ही है ये, दिल दिमाग में बसा
लिया है तुम्हें हमने।
देखूं तुम्हें, तो कसक उठ़ती हैं
तुम्हें छूने की,
न दिखो तो बदहवास हो ढूंढती है आंखे
तुमको,
मोहब्बत का जुनून ऐसा है कि,
बिन तुम्हारे अब तो कुछ भी न भाए
हमको।
काश न मिलते तुम, तो कितना अच्छा
होता,
पाकर तुम्हें सुध बुध खो बैठ़ी हूं ऐसे,
क्या थी, क्या हो गई हूं अब,
बंधकर तुम्हारे मोहपाश में, सबकुछ भूल
गईं हूं जैसे।
बिन तुम्हारे जी रही थी सूकून से,
हंसती थी, मुस्कुराती थी,
मिलती थी लोगों से,
दोस्तों के संग एक लंबा वक्त बिताती थी,
पढ़ती थी प्रेमचंद को, दिनकर को
समझती थी,
आड़ी तिरछी रेखाएं बना,
कैनवास पर कुछ चित्र उकेर पाती थी।
भाता नही कुछ और, हरदम संग तुम्हारा
चाहती हूं,
तुमको पाकर ख्वाहिशें पूरी हो गई हैं सब,
तुम्हारे ही ख्यालों में डूबी रहती हूं,
सिमट गई हैं जिंदगी तुम्हारे ही आगोश में
अब।
ए मोबाइल! ए मोबाइल!
काश तुम मेरी जिंदगी में न आए होते,
तो जिंदगी मेरी यूं खाक न होती,
कर लेती मैं कुछ नए काम,
छू लेती कुछ नए आयाम,
गर ये जिंदगी तुम तक सीमित न होती।
मेरे हमदम, मेरे सब कुछ बन गए हो
अब,
तुम्हारे बिन न जीती हूं, न मरती हूं,
बजते हो तो खिल उठ़ता है चेहरा मेरा,
न बजो तो झुंडी आहें भरती हूं।
छूट गया सब कुछ अतीत में,
अब न है कोई भविष्य मेरा,
दिन रैन का करार तो तुमसे है,
ए हमसफर छूटे से भी न छूटे
अब संग तेरा।

कौन हूं मैं

मां की कोख का गर्व या
पिता की ममता का ऐश्वर्य,
ताउम्र इसी ऋण में दबी,
कभी उनके आंसू पोंछती,
कभी उनके लिए आंसू बहाती।
क्या एक बेटी, एक ऋणी आत्मा हूं मैं?

अपने वजूद को तलाशती,
कभी शिला बनी,
अग्नि परीक्षा दी,
कई रूपों, कई नामों से,
कभी अबला, कभी सबला बनी।
सांसारिक शरशैया पर लेटी,
क्या एक नारी,
एक विक्षिप्त आत्मा हूं मैं?

बीजारोपण कर, पौधे का रूप दे,
अनगिनत आकांक्षाओं,
उपेक्षाओं, से सींचती,
आलय की बगिया संवारती, सहलाती,
अपने वंश की सृजनकर्ता बन,
क्या एक ममतामयी मां हूं मैं?

सारे जहां को अपने आंचल में समेटे,
शायद एक सुता, एक पत्नी,
एक मां हूं मैं।
पर कौन हूं मैं ?
मुझे नही पता,
न समझा जिसे,
न जाना किसी ने।
बस एक अनकही दास्तां हूं मैं।

लफ़्ज़ हमारे शब्द तुम्हारे

मिले थे जब हम तुम ,
तिफ्ली थी तुम्हारी,
मेरा बचपन था,
न कोई फ़िक्र थी, न रंजो गम था।
अपना लिया था खुद को,
बिना किसी तकरीर के,
बन गए थे साथी,
चलते रहे रहगुज़र।
ख़्वाब तुमने भी देखे थे,
सपने मैंने भी संजोए थे।
आरज़ू मेरी भी थी,
ख्वाहिश तुमने भी की थी।
हबीब तुम बनना चाहते थे,
दोस्ती मैं कर बैठ़ी।
पर अचानक इक मोड़ पर आकर,
जुदा हो गए हम तुम,
हंसी मेरी मुस्कराहट तेरी,
खो गई समझदारी में,
हो गए हम-तुम गुमसुम।
धर्म, मज़हब की आंधी से टकराकर,
बदल लिया रास्ता तुमने,
पकड़ ली मैंने भी नई राह,
तोड़ दिए सब रिश्ते,
साथ रहने की चाह।
इल्म ने तुम्हारे,
और ज्ञान ने मेरे,
शब्दों और लफ़्ज़ों में बांट,
एहसासों और भावनाओं को
दरकिनार कर,
रकीब तुम्हें बना दिया,
दुश्मन मैं बन बैठ़ी,
हो गए हम दोनों एक दुसरे से जुदा।

अयोध्यावासियों की दिवाली

कितनी अनुपम छटा
उस दिन अयोध्या में छाई होगी,
जिस दिन प्रभु राम के
पुनः आगमन पर,
हर्षोल्लास से,
अयोध्यावासियों ने दिवाली मनाई होगी।
अनगिनत रश्मियों ने प्रकृति का श्रृंगार
किया होगा,
देवी देवताओं ने भी फूल बरसाए होंगे,
ढोल,नगाड़े मृदंग बजा,
नगरवासियों ने मंगल गीत गाए होंगे।
राजीव नयन, श्याम वर्ण, सौम्य छवि देख
प्रभु राम की,
अपलक हो, नर नार, भाव विभोर हुए
होंगे,
समय ने भी गति रोक ली होगी,
जब रघुकुल नंदन,
माताओं और भाइयों संग मिले होंगे।
अति पावन, शुभ वो बेला होगी,
अयोध्यापुरी भी खुद पर इतराई होगी,
बंदनवार लगा, ध्वजा, पताकाएं लहरा,
घर घर दीप जला,
हर्षोल्लास से,
अयोध्यावासियों ने दिवाली मनाई होगी।।

पथारो राम

हे राम,
तुम हो गुणों की खान,
संयम तुम जैसा किसी में कहां,
त्रेता में भी,
वचन पिता का निभाने,
पितृ भक्ति का निर्वाह किया,
चौदह वर्ष वनवास सहा,
राज, ताज को त्याग दिया।
कलयुग में भी तुम्हें कहां इतनी जल्दी
आवास मिला,
क्षतविक्षप्त किया दुर्जनों ने,
मिटानी चाही पहचान तुम्हारी,
लेकिन तुम कहां मानव थे,
जो परास्त हो जाते,
हार जाते दुरबुद्धि दानवों से,
तुम तो हो धैर्यवान,
शरणागत रक्षक,
रहे प्रतीक्षारत।
बीते वर्ष पांच सौ,
आखिर शुभ घड़ी है आई,
देता है जन मानस बधाई,
हुई खत्म प्रतीक्षा,
तुम्हारी, हमारी,
परास्त हुए दुर्जन,
बिना अस्त्र शास्त्र से,
विजय तुमने है पाई।
आ रहे हो राम तुम,
हर्षोल्लास है छाया,
महक उड़ी हैं दशों दिशाएं,
जगा है हर मन में जोश,
प्रकृति सारी झूम उठ़ी है,
बच्चे-बूढ़े नाच रहे हैं
मस्ती में खो रहे हैं होश।
राम तुम्हारे आने से,
अयोध्या नगरी है मुस्काई,
भगवा चहुँ ओर लहराया,
सतरंगी आभा है छाई।

पिता

उंगली पकड़ जो चलना सिखाए,
पीठ़ पर घोड़े की सवारी कराए,
बाजूओं का झूला बनाके झुलाए,
बारिश के पानी में नाव तैराए।।
चिलचिलाती धूप में छांव बन जाए,
कोट में घुसा जो झुंड से बचाए,
बिन कहे ही हर बात जान पाए ,
हर ज़िद हर ख्वाहिश पूरी कर जाए।।
द्रोणाचार्य बन लक्ष्य भेदना सिखाए,
सफलता पाने की सीढ़ी चढ़ाए।
दुख में सर पर हाथ फिराए,
कदम कदम पर साथ निभाए ।।
परिवार की नैया का मांझी कहलाए,
परछाई बन सबकी,
जीवन बिताए,
आंसू छिपा सदा मुस्कुराए,
निस्वार्थ, निश्चल प्रेम लुटाए।।
कभी घर खाली हाथ न आए,
बिटिया की गुडिया, बेटे की पतंग,
सबकी खुशियां थैले में भर भर के लाए।।
अंदर से नर्म, बाहर से कड़ोर,
बच्चों की गुल्लक या एटीएम कहलाता है
।।
वटवृक्ष है वो, शाखाएं हम जिसकी,
स्तंभ है वो जिसपर पूरा घर टिका है,
वो व्यक्ति कोई और नहीं,
वही तो है,
जो पिता कहलाता है।।

पतंग

अल्हड़ नवयुवती-सी देखो,
पतंग डोलती इधर उधर,
इतराती, बलखाती,
मौज उड़ाती हो बेखबर।
बेशुमार चाहतों की डोर से बंधी,
उड़ती रहती स्वछंद होकर,
बादलों को चूमती,
हवा से बातें करती,
अङ्खेलियां करती वो नभ पर।
सारा अंबर अपना लगता,
फर फर्फ करती झूम झूमकर,
कट न जाए ,
दिशा बदलती,
अंगुली के इशारे पर।
जिंदगी के उतार चढ़ाव सी
ऊपर उड़ती, नीचे जाती,
बाधाहीन जब अंबर दिखता,
झट उड़ जाती फर फर कर।
उड़ती तो सबके मनभति,
कट जाए तो भी ले आती,
खुशी लूटने वाले के मुंह पर।
उड़ना गिरना जीवन का खेल,
सिखला जाती पतंग उड़कर।

अच्छा लगता है

यूं बार बार तुम्हारा मुझसे,
इश्क का इज़हार करना,
अच्छा लगता है!!
मेरा इनकार करने पर भी,
तुम्हारा इकरार करना
अच्छा लगता है !!
माना की हम बात नहीं करते तुमसे,
फिर भी ,
चुपके-चुपके,
आंखे चार करना अच्छा लगता है!!
दिन में गर ना दिखो तो, रातों में ही
सही,
ख्वाबों में तेरा दीदार करना,
अच्छा लगता है!!
चांद से बेखबर तुम,
चकोरी सी तुम पर मैं फिदा,
वस्ल ए शब का,
इंतजार करना अच्छा लगता है!!
ये इश्क है या महज़ एहसास भर ,
फिर भी इस एहसास पर,
यूं ही ऐतबार करना
अच्छा लगता है!!

मन

मन बड़ा विचित्र है,
स्वयं बनाता, स्वयं मिटाता,
जीवन का हर चित्र है।
हर पल लड़ता है युद्ध,
कभी अपने साथ,
कभी अपने विरुद्ध।
सदा रहता दुविधा में,
कभी करता प्रीत,
कभी हो जाता विपरीत।

जीवन वृत्त

नामः नीता शर्मा
जन्मस्थानः ऊधमपुर (जम्मू कश्मीर)
वर्तमान निवासः शिलांग, मेघालय।
पिता/ माता का नामः स्व. चंद्र मोहन शर्मा तथा स्व. चंद्र कांता शर्मा
ससुर/सासः स्व. हरिदास शर्मा और स्व. सत्यादेवी शर्मा।
पति का नामः श्री नवीन कुमार शर्मा
बेटियांः अवंतिका शर्मा और अनन्या शर्मा
शिक्षाः स्नातकोत्तर (हिंदी), बी एड, बी लिब।
विवाह पूर्व नवोदय विद्यालय और केन्द्रीय विद्यालय तथा अन्य प्राइवेट विद्यालयों में (लगभग सात वर्ष तक एडहॉक) शिक्षण किया है।
गत तेरह वर्षों से आकाशवाणी शिलांग की पूर्वोत्तर सेवा में उद्घोषिका।
घर से कश्मीरी परिधानों का व्यापार।
पंजाबी सभा शिलांग से जुड़कर समाजसेवा के कार्यों में योगदान।
रुचिः लेखन, चित्रकला, भिन्न भिन्न स्थानों का भ्रमण करना, मित्र बनाना और समाज सेवा और काव्य मंचों पर संचालन अति पसंद है।
पूर्णतया आस्तिकः ईश्वर के प्रति गूढ़ श्रद्धा और विश्वास।
आदर्श पुस्तक : भागवत गीता।
स्कूल कॉलेज में खेलकूद की अनेक प्रतिस्पर्धाओं में भाग लिया करती थी। दसवीं कक्षा में जेएंडके राज्य की हैंडबॉल टीम से नेशनल गेम्स, अहमदाबाद में भाग लिया था।

मंचः मेघालय के मेघदल साहित्यिक मंच की उपाध्यक्षा, शहर समता मंच, मेघालय इकाई की अध्यक्षा, आचार्य पंडित पृथ्वीनाथ पाण्डेय सृजनपीठ़, अ. भा. लघुकथा मंच भोपाल, लखनऊ लघुकथा शोध केंद्र, नूतन साहित्य मंच, पूर्वाशा साहित्य अकादमी आदि विभिन्न मंचो से जुड़ी हुई हूं।

लेखन उपलब्धियां :
डायमंड बुक्स पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित मेघालय के बालमन की २१ कहानियां, रामकृष्ण मिशन शिलांग की त्रैमासिक पत्रिका का जिंगशाई, (ज्योति) नेहू विश्वविद्यालय की वार्षिक पत्रिका नेहू ज्योति, पूर्वोत्तर भारत के स्वतंत्रता सेनानी, में लेख, राजस्थान से प्रकाशित लघुकथा शतक, लखनऊ से प्रकाशित चेतना की उड़ान, लघुकथा संग्रह, रचना उत्सव, आदित्य संस्कृति में लघुकथाएं, आकाशवाणी शिलांग की वार्षिक पत्रिका मेघ कलश के बी राइटर्स के सांझा संकलन कहानी लोक ' और काव्यनगरी , काव्यांजलि ई पत्रिका, अध्यात्म दर्शन पत्रिका आदि पत्रिकाओं में लघुकथाएं, कहानियां, लेख और कविताएं प्रकाशित।
मेघालय की महिलाओं का प्रथम काव्य संकलन 'पुकार करते मेघ' की सहसंपादिका ।
मेघालय दूरदर्शन और आकाशवाणी शिलांग में कई कार्यक्रम प्रसारित।
रामकृष्ण मिशन द्वारा प्रकाशित ऑडियो पत्रिका का जिंगशाई में हिंदी भाग को स्वरबद्ध करना।
बहुत सी चित्रकला प्रतियोगिताओं में और रामाकृष्ण मिशन की हिंदी काव्य पाङ्ग प्रतियोगिता में आंकलन के कार्य हेतु आमंत्रित।

नीता शर्मा की कविताएं

जीवन की इस युद्धस्थली में,
कभी पार्थ बन युद्ध करने उद्यत,
कभी रिश्तों के मोह में फंस,
युद्ध से पलायन कर जाता,
स्वयं ही बन कृष्ण,
मोहभंग करने के उपाय सुझाता,
थाम घोड़े की लगाम,
सारथी बन रथ भी दौड़ाता।
जानता है गीता का सार,
फिर भी फंसता है मोहमाया में,
सहेजता है धन-संपदा,
करता है कपट,
मुग्ध रहता है,
इस सुंदर नश्वर काया में।
हे प्राणी! मत ढील दे इसे,
ये मानव मन तो मात्र स्वार्थ है,
ये तन, ये जीवन क्षणभंगुर है,
ये मर्त्य कल्पना है,
न सोच ये यथार्थ है।

महादेव

गंगा धरे कपाल पे,
नेत्र तीसरा भाल पे,
चंद्र मुकुट सोहत है,
छवि मन मोहत है।।

त्रिकालदर्शी हैं जो,
विषधर कहलाए वो,
पिनाकी जो देव हैं,
गिरिश्वर एकमेव हैं।।

अज हैं अनंता है,
अनिश्वर, वृषभारूढ़ भी,
भव के तारणहार हैं,
करते संघार भी।।

शिव संग शक्ति विराजो
नंदी पर सवार हो,
कार्तिकेय और गणपति जी,
आशीष दो, उद्धार हो।।

उमापति, उमानाथ,
करो जग का कल्याण,
हाथ जोड़ विनती करूं,
रखो हम सब का मान।।

बंजारे

मेरे घर के सामने, बड़े से मैदान में,
कुछ बंजारे आते हैं, कुछ दिन रहकर,
न जाने कहां गायब हो जाते हैं।
चंद ज़रूरत के सामान साथ,
न गद्दे बिस्तर, न कीमती लिबास,
मुंह पर कोई शिकवा,
कोई शिकायत नहीं,
सदैव हंसते-मुस्कुराते हैं।
अर्धनग्न कुछ बच्चे,
जो हर बार बढ़ जाते हैं,
सर्दी, गर्मी या बरसात,
खिलखिला के मिट्टी - पत्थरों के साथ,
हंसते-खेलते नज़र आते हैं।
बेफिक्री से,
सामान की पोटलियां वहीं रख,
दिन में रोज़ी रोटी खोजने निकल जाते हैं?
न जाने क्या और कैसे कमाते हैं?
शाम ढलते ही लौट आते हैं,
लकड़ियां इक्कट्ठी कर एक साथ भोजन पकाते हैं,
मिलझुल कर हंसते गाते, पूरी मौज से दावत उड़ाते हैं।
रात चांदनी हो या अमावस की कालिमा,
बिना किसी जानवर या कीट पतंगों के भय से,
जमीन पर बिस्तर बिछा,
निश्चिंत हो वहीं सो जाते हैं।
हाँ, एक कुत्ता जरूर संग नजर आता है,
जो बन सजग प्रहरी रातभर,
जरा सी आहट सुन भौंक-भौंककर,
मालिक के प्रति वफादारी निभाता है।
कितनी मज़ेदार जिंदगी है इनकी,
क्या इनकी ख्वाहिशें नहीं होती?
क्या इन्हें टीवी, फ्रिज,
या एक घर की ज़रूरत नहीं होती?
न समाज की कोई बंदिशें,
न कामयाब भविष्य बनाने की चिंता,
इतनी किल्लतों के बाद भी,
न गमजदा, न जिंदगी में कोई रंजीशे।
अंदाज़ इनके जीने का,
क्यों हमसे जुदा होता है?
शायद बंजारों का कोई अलग ही खुदा होता है।
बेपरवाह सी इनकी जिंदगी,
बहुत हसीन लगती है,
न धन संपत्ति के लिए भागते हैं,
न चाहत, अनजानी खुशियां पाने की,
तभी तो मेरा भी मन करता है,
इस रंजो गम भरी जिंदगी से भाग,
बेफिक्री और बेपवाह सा,
एक बंजारा बन जाने की।

वो मां

ढलका सा क्षीण आंचल,
मटमैली सी उधड़ी चोली,
ताक झांक करता
अर्धनग्न बदन उसका,
ईंटों के भार से,
चलते चलते लचकती कमर,
झपटने को आतुर शिकारी,
क्या समझेगा,
उसकी लाचारी।

वो मां!
एक मां!
अपने दुधमुंहे शिशु से,
कैसे मुंहमोड़,
घर अकेला छोड़,
भट्ठे की आग में,
क्यों झोंक रही,
न केवल ईंटों को,
बल्कि,
यौवन को,
अपने मोह को,
अपने ममत्व को,
और सेक रहा,
अपनी आंखे,
दूर खड़ा ,
वो भोगी,
एक मानसिक रोगी।।

एक प्रश्न

विधाता ने नारी को पूजनीय बनाया,
भिन्न भिन्न रंग रूप दे उसको सजाया।
'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवता',
मनुस्मृति में है ये पाठ पढ़ाया।
लक्ष्मी, गौरी, काली ,
सरस्वती बनी जो ,
कर असुरों का संहार
दुर्गा नाम है पाया।
अर्धांगिनी, सखा, सुता और मां बनकर,
ब्रह्मा की सृष्टि को आगे बढ़ाया।
मगर फिर भी,
मगर फिर भी,
पुरुषप्रधान इस समाज ने,
तिरस्कृत कर उसको हीन ही ठहराया।
त्रेता की सीता या द्वापर की द्रौपदी,
सदा ही लांछन उसके चरित्र पर लगाया।
आज भी पुरुष की कामुकता की मारी,
लाज बचाने को छुपती फिरती है नारी।
बिकती बाजारों में कामपिपासा पूर्ण करने को ,
आतुर रहते हैं नरपिशाच उसकी लाज हरने को।
एक ओर तो पुरुष अपनी कामाग्नि मिटाने,
कोठों और बाज़ारों में उसे नोचने जाता है,
दूजी ओर वही पुरुष महापुरुष बन,
नारी उत्थान का नारा लगाता है।
हर पल एक प्रश्न मेरे मन में चित्कार मचाता है,
नारी के स्वाभिमान को रौंदने वाला,
उसकी देह और आत्मा को विक्षिप्त करने वाला ,
खुद तो समाज का ठेकेदार बनकर पुरुष,
पुरुष ही रहता है,
फिर क्यों एक नारी को वैश्या या तवायफ का नाम दे जाता है ?
क्यों एक नारी को वैश्या या तवायफ का नाम दे जाता है ??
और धन्य है ये महान समाज भी मेरा,
जो उसको,
वैश्या या तवायफ के नाम से ही बुलाता है।।

बाज़ार

भीड़ लगी बाज़ारों में सामान बिक रहा है,
उम्मीद बिक रही है लाचारी बिक रही है,
गरीबी में गरीबों का अरमान बिक रहा है।
लहू बिक रहा है,
पानी बिक रहा है,
आंखे, किडनी, दिल
और प्राण बिक रहा है।
डिग्री बिक रही है,
भाषा बिक रही है,
मां शारदे का विद्या और
ज्ञान बिक रहा है।
धर्म बिक रहा है,
जाति बिक रही है,
मंदिरों मस्जिदों में
भगवान बिक रहा है।
नायक बिक रहे हैं,
नेता बिक रहे हैं,
अन्नदाता कहलानेवाला
किसान बिक रहा है।
शर्म बिक रही है,
लाज बिक रही है,
नारी की अस्मिता और
स्वाभिमान बिक रहा है।
सत्य बिक रहा है,
झूठ बिक रहा है,
कचहरी में गीता और
कुरान बिक रहा है।
जमीन बिक रही है,
आसमान बिक रहा है,
लाशों के ढेर से शमशान बिक रहा है।
मुफ्त में गड़े थे जो पुतले भगवान ने,
इंसानों के बाज़ार में इंसान बिक रहा है।

दहकता पलाश

छाया पतझड़,
वीरान हो गए वन-उपवन,
सुखी डालियों को पकड़े,
खड़े ठूंठ से पेड़,
भरे निराशा मन में,
ताकते एक दूसरे को,
उद्विग्न, निर्वस्त्र से।।
निराशा को चीरती,
खिल उठी एक कली पलाश की,
कोमल सी नवयौवना की भांति,
लाल सिंदूरी वस्त्र पहने।
देखते ही देखते,
दहक उठी प्रकृति,
रंग गई लालिमा से,
न जाने कितनी वनदेवियां
निकल आई हों जैसे,
हाथों में सुर्ख लाल फूलों के थाल लिए,
लाल जोड़े में,
दुल्हन सी बन,
निकली हों मधुमास में,
सजाने, महकाने,
रंगने वन उपवन को,
और चुपके से कह रही हों,
मत हो निराश,
चलो-उठो, महका दो, सजादो धरा को,
फिर आया हैं वसंत,
स्वागत करो ऋतुराज का।

लफ़्ज़ हमारे शब्द तुम्हारे

मिले थे जब हम तुम ,
तिफ्ली थी तुम्हारी,
मेरा बचपन था,
न कोई फ़िक्र थी, न रंजो गम था।
अपना लिया था खुद को,
बिना किसी तकरीर के,
बन गए थे साथी,
चलते रहे रहगुजर।
खवाब तुमने भी देखे थे,
सपने मैंने भी संजोए थे।
आरजू मेरी भी थी,
ख्वाहिश तुमने भी की थी।
हबीब तुम बनना चाहते थे,
दोस्ती मैं कर बैठी।
पर अचानक इक मोड़ पर आकर,
जुदा हो गए हम तुम,
हंसी मेरी मुस्कराहट तेरी,
खो गई समझदारी में,
हो गए हम-तुम गुमसुम।
धर्म, मज़हब की आंधी से टकराकर,
बदल लिया रास्ता तुमने,
पकड़ ली मैंने भी नई राह,
तोड़ दिए सब रिश्ते,
साथ रहने की चाह।
इल्म ने तुम्हारे,
और ज्ञान ने मेरे,
शब्दों और लफ़्ज़ों में बांट,
एहसासों और भावनाओं को दरकिनार कर,
रकीब तुम्हें बना दिया,
दुश्मन मैं बन बैठी,
हो गए हम दोनों एक दुसरे से जुदा।

पृष्ठ १ का शेष

मेरा आत्मसंघर्ष

लंबी कहानियां लिख दी। फिर दोबारा पहुंच गई आकाशवाणी अपनी कहानियों को लेकर की रिकॉर्डिंग हो जाए और एक कहानी की रिकॉर्डिंग करके उसको प्रसारित कराने में सफल भी हुई। इस बीच साल २००७ में भी अपनी कहानी को ही लेकर मैं फिर पहुंची आकाशवाणी जहां पर मेरी मुलाकात दिल्ली आकाशवाणी से ट्रांसफर पर आई रंगोली श्रीवास्तव से हुई वो उन दिनों हिंदी कार्यक्रम प्रसारित करती थीं। उन्होंने मेरी कहानी सुनी और बहुत सराहना की। साथ ही मुझे कुछ और कार्यक्रम और स्क्रिप्ट राइटिंग का काम भी दिया। एक दिन अपनी स्क्रिप्ट लेकर जब मैं उनको देने उनके कमरे में पहुँची, तो अचानक वो मुझसे बोलीं की 'नीता तुमने उद्घोषिका के चयन के लिए फॉर्म भरा?' मैंने न में सर हिला दिया। वो बोली,'वैसे एक बात कहूं की बोल तो सब लेते हैं परंतु लिखना हर किसी के बस की बात नहीं। तुम अच्छा लिखती हो और ये भगवान का आशीर्वाद है तुम पर। वैसे तो मैं कहूँगी की तुम लिखने के क्षेत्र में ही आगे बढ़ो। पर फिर भी यदि तुम उद्घोषिका के लिए ट्राई करना चाहती हो तो आज फॉर्म जमा करने का अंतिम दिन है। तुम सब कार्य पूरा कर सकती हो तो करो।'

उद्घोषिका बनना मेरा बचपन का सपना था जिसे मैं खोना नहीं चाहती थी। मैं जल्द से इस काम में जुट गई। दो तीन घंटे की भागदौड़ के बाद आखिर में जैसे-तैसे फॉर्म भरने में सफल हो गई। और ईश्वर के आशीर्वाद से चयन भी हो गया मेरा। अभी तक लेखन में मैं कुछ खास नहीं कर पाई। एक दो बार मुझे काव्यपाङ्ग के लिए आमंत्रण भी मिला पर मुझे खुद पर बिलकुल यकीन नही था की मैं अच्छी कविता लिख या बोल सकती हूँ इसलिए नहीं गई। कभी कभार कुछ न कुछ लिखती रही बस। सबसे पहली कविता जो मैंने अपनी मां पर लिखी वे थी 'मनुहार' जिसे लिखकर फेसबुक पर डाल दिया और एक दो लोगों को भेज दिया। उस कविता पर जब मुझे सभी लोगों की सराहना मिली, तो मुझे आत्मविश्वास आया कि मैं लिख सकती हूँ। इस प्रकार शुरू हुआ मेरा लेखन का सफर।

मेरे लेखन को नए पंख लगा उड़ान भरने का श्रेय दिया स्नेह और सौम्यता की प्रतिमूर्ति एक उत्कृष्ट शिक्षाविद् और देश विदेश में उत्कृष्ट साहित्यकारा आदरणीय डॉ अनिता पंडा 'अन्वी' जी ने। उनके मार्गदर्शन और स्नेहाशीष से मैंने लेखन के क्षेत्र में सही मायने में कदम रखे। उनसे मेरा परिचय करवाया एक श्रेष्ठ कलमकार आदरणीय दया शर्मा जी ने जिनकी सदैव आभारी रहूँगी,जिन्होंने सर्वप्रथम अपने साहित्यिक मंच से मुझे जोड़कर उनसे मिलवाया। और इस प्रकार मुझे मेरे भीतर छिपे हुए लेखन के प्रति मेरे भावों को गद्य और पद्य में पिरोने का मेरा सपना साकार किया। कभी-कभी हम जानते हैं की हमारी किस कार्य को करने की क्षमता है अथवा रुचि है परंतु फिर भी हम इस कार्य को करने का बीड़ा उठा नहीं पाते अथवा उठाना नहीं चाहते। इस छिपी हुई क्षमता को निकलने और उसे सही आकार देने का कार्य ही एक गुरु का कर्तव्य होता है और मैं ईश्वर का सदा आभार मानती हूँ कि मेरे सभी गुरुओं ने (जिनका मैंने ऊपर उल्लेख किया) किसी न किसी रूप में अपना योगदान देकर मेरे भीतर छिपी इस प्रतिभा को उजागर कर अपना मार्गदर्शन कर समय समय पर प्रोत्साहित किया है। सभी को मेरा शत-शत नमन।

इसे आप मेरा विश्वास मानिए या कुछ भी परंतु मैं एक वाक्या आप सभी से जरूर साझा करना चाहूंगी। जब मैं नवमी कक्षा की छात्रा थी तो मेरा एक विषय गणित भी था, जो पिताजी के कहने से मैंने चुन तो लिया था परंतु उसमें मेरी बिल्कुल भी रुचि नहीं थी इसलिए पढ़ना अच्छा नहीं लगता इसी कारण गणित में सदा खींच-तान कर उत्तीर्ण होती रही। उस समय मेरे पिताजी के एक मित्र थे मोहन अंकल उनके घर उनके कोई गुरु पधारे और पिताजी न जाने क्यों मुझे उनके दर्शन करवाने ले गए।(यद्यपि मैं ईश्वर पर अटूट विश्वास होने के बावजूद कभी भी गुरुओं पर ज्यादा विश्वास नहीं करती हूँ लेकिन इसका तात्पर्य ये नहीं की मैं किसी के गुरु का अनादर करती हूं या मुझे दूसरों के ऐसा करने से कोई एतराज है। बिलकुल नहीं, हर किसी की अपनी आस्था और विश्वास है जिसपर मुझे आपत्ति अथवा आक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है।) जब मैं गुरुजी से मिली, तो बहुत ही शांत और गंभीर व्यक्तित्व वाले एक महात्मा लगे। मेरे पिताजी के आग्रह पर उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और मैंने उन्हें अपनी गणित के प्रति परेशानी बताई, तो उसके लिए उन्होंने बहुत सरल सा एक उपाय भी बताया। फिर मेरे हाथ की ऊँगलियों को पकड़कर बोले, 'बेटी, तुम्हारी ऊँगलियाँ देखकर लगता है कि तुम एक कलाकार हो। जिस क्षेत्र में तुम्हारी रुचि है उसमें लगी रहना तुम एक दिन ख्याति प्राप्त करोगी।' उनके द्वारा कहे ये शब्द सदा से मेरे कानों में ध्वनित होते रहे। क्योंकि मुझे चित्रकला में बहुत रुचि है तो मुझे लगा था की चित्रकला में ही मुझे लगे रहना चाहिए और बहुत वर्षों तक मैं इस कार्य में लगी भी रही और सराहना भी प्राप्त करती रही पर फिर भी वो मुकाम हासिल नहीं कर सकी जिससे लगे की गुरुजी की कही बात सच सिद्ध हुई। परंतु अब जबसे लेखन के क्षेत्र में कमर कसी है तब से पुस्तकों, पत्रिकाओं आदि में अपनी रचनाओं को देखकर और विभिन्न मंचों पर श्रेष्ठ समीक्षकों द्वारा अपनी रचनाओं की सराहना पाकर अब लगता है की धीरे-धीरे अपनी मंजिल की ओर अग्रसर हो रही हूँ। शायद यही वो क्षेत्र हैं जिसके लिए मेरी ऊँगलियों को देखकर गुरुजी ने आज से लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व ही मुझे अपना आशीर्वाद देकर आगे बढ़ने की दिशा दिखाई थी।

सच कहूं तो आज तक ईश्वर की असीम कृपा रही है मुझपर। जीवन में किसी कार्य को करने में मुझे कभी भी बहुत अधिक संघर्ष नहीं करना पड़ा। थोड़ी मेहनत जरूर की लेकिन ईश्वर ने हैं कार्य में अपना आशीर्वाद सदा मेरे सर पर रखा जिसके कारण मेरे कदम आगे बढ़ते ही रहे। १९२०-२१ कोविड काल का समय जब समय जैसे रुक गया था उन दिनों सब लोगों की तरह मैंने भी अपनी लेखनी को खूब चलाया और बहुत से साहित्यिक मंचो से जुड़ने का मौका भी मिला। गत चार पांच वर्षों से ही मुझे बहुत से उत्कृष्ट और प्रबुद्ध साहित्यकारों को विभिन्न गिस्थियों द्वारा पढ़ने और सुनने का मौका मिलता रहा है जिनसे बहुत कुछ सीखने को मिला और क्योंकि जीवन एक पाङ्गशाला है जिसमें उम्रभर हम किसी न किसी से कुछ न कुछ सीखते ही रहते हैं। लेखन के क्षेत्र में आज भी खुद नर्सरी कक्षा की छात्रा मानती हूं। इस क्षेत्र में अभी सफलता के सोपान पर पहला कदम रखा है मंजिल तक पहुंचूंगी या नहीं, नहीं जानती पर धैर्य और परिश्रम के साथ धीरे ही सही एक एक कदम आगे बढ़ाऊंगी इतना तो मन में प्रण कर लिया है। आज साहित्य के क्षेत्र में मुझे पहला इतना बढ़ा सम्मान मिला है और मेरे लिए ये सम्मान भी एक आशीर्वाद है उन सभी का जिन्होंने मुझे इस को पाने में मुझे प्रोत्साहित किया। ह्रदयतल से सभी विद्वानों का आभार। लेखन का बीड़ा उठाया है तो सार्थक और समाज के लिए उपयोगी लेखन सदा जारी रखूंगी।

'अभी दूर है बहुत मंजिल मेरे कदमों से,
तसल्ली ये है कि कदम मेरे साथ हैं।'

धन्यवाद।।

नीता शर्मा की लघुकथाएं

रीति-रिवाज़

'हैलो, मधु! निशा बोल रही हूं। तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं प्लीज़ एक बार आजाओ, ज्यादा समय नहीं है अब यश के पास। माफी मांगना चाहता है तुमसे। प्लीज़, आजाओ'। फ़ोन पर विनती करते हुए वो बोले जा रही थी। इससे पहले वो कुछ और कहती, बिना कुछ जवाब दिए मधु ने फोन काट दिया। जानती थी वो, बहुत तकलीफ में था यश। पर अब क्यों इंतजार कर रहा है उसका? क्या करेगा उससे मिलकर? इतने साल बीत गए, एक ही शहर में रहकर भी कभी भूले-बिसरे भी मिलने न आया। फिर अब क्यों? सोच में डूबी मधु आंख मूंदकर आराम कुर्सी पर अधलेटी मुद्रा में बैङ्ग गई। मन बैचेन हो उङ्गा था।
क्या उसकी ही कोई बददुआ फलीभूत हो गई थी? नहीं, नहीं! ऐसा नहीं हो सकता। बेशक सदा से अपनी बेरंग, मायूस सी जिंदगी का पूरा श्रेय यश को ही देती आई थी पर ऐसी बददुआ कभी न मांगी थी उसके लिए।
बंद आंखों में बीते दिन किसी चलचित्र की भांति नज़र आने लगे। जिन शब्दों को भूलना चाहती थी एक बार फिर से वही शब्द उसके कानों में गूंजने लगे।
'देखो, एक बात आज ही बता देता हूं तुम्हे। मुझसे किसी तरह के प्यार की उम्मीद मत रखना। ये शादी मैंने मजबूरी में, मां की इच्छा के दवाब के कारण की है बस। मैं किसी और से प्यार करता हूं, और करता रहूंगा। तुम्हे तो पता ही है कि मां बीमार है, कैंसर हैं उन्हे, लास्ट स्टेज है। उनको ऐसी बहु चाहिए थी जो बस उनके साथ रहे। निशा, जिससे मैं प्यार करता हूं, वो नौकरी करती है और नौकरी छोड़ना नहीं चाहती। इसलिए मां के लिए मुझे सैक्रिफाइज़ करना पड़ा।' शादी की पहली रात की ये शुरुआत थी उनके प्रेमालाप की। कुछ देर रुककर वो फिर बोला, 'मैं तुम्हे किसी धोखे में नहीं रखना चाहता था इसलिए आज ही सब बता दिया। तुम्हे किसी चीज़ की कमी न होगी इस घर में। बस मुझसे किसी तरह की कोई प्यार-व्यार की उम्मीद मत रखना।' कहकर वो कमरे से बाहर निकल गया था। इसके साथ ही पलभर में बिना बसाए ही मधु के अरमानों की दुनिया उजड़ गई थी। क्यों हुआ ऐसा उसके साथ? किसको पूछे? क्या कसूर था उसका जो केवल नाम की शादी के बंधन में बांध दिया था यश ने उसे। फिर भी न जाने किस उम्मीद से वो उस घर में रहकर सास की सेवा करती रही। गांव से आई थी दहेज के नाम पर मां बाप ने ढेर सारे संस्कारों की गङ्गरी देकर विदा किया था मायके से। बस इसी गङ्गरी का बोझ लिए, चुपचाप निभाती रही अपने फर्ज़।और फिर, जिस मां के लिए यश ने शादी की थी, डेढ़ साल बाद वो भी चल बसी। मां की मृत्यु के साल बाद ही यश ने उससे अलग होने की बात कर दी थी। मात्र अङ्गाइस वर्ष की थी तब। सारा जीवन पड़ा था सामने। अलग होना यानि डायवोर्स, संस्कारों के विरुद्ध लगा इसलिए मना कर दिया और कुछ नियमों के साथ एक एफिडेविट में यश को दूसरी शादी के लिए स्वीकृति दे दी। यश ने भी मुआवजे के तौर पर पिताजी की एक दुकान गांव का पुराना घर और कुछ ज़मीन उसके नाम कर दी थी। एक साल तक गांव में ही रही अकेली। मायके नहीं गई वापिस और एक दिन सब बेचकर, शहर में अपनी विधवा मौसी के पास आगई रहने। मौसी भी अकेली थी तो दोनों ने मिल कर बुटीक खोल दिया जिससे समय भी कट जाता और घर खर्च के लिए आमदनी भी हो जाती। मगर खुशमिजाज, जिंदादिल रहने वाली मधु अकेलेपन के कारण बहुत चिड़चिड़ी और कङ्गोर हो गई थी। जिंदगी के थपेड़ों से जैसे तैसे संघर्ष करते अकेले ही काट दिए बाइस वर्ष। कभी कभी यश के बारे में सोचकर ज़हर भर जाता उसके अंदर।कितना खुदगर्ज इंसान था यश उसे छोड़ने से पहले एक बार भी न सोचा उसकी जिंदगी के बारे में। शायद अपने कुकर्मों का फल ही तो भोग रहा है जो आज इस तकलीफ़ से जूझ रहा है। सच कहते हैं ऊपरवाले की लाङ्गी में आवाज़ नही होती पर दर्द बहुत देती है। इसीलिए ही शायद न तो कोई बच्चा हुआ और मां के जिस रोग की खातिर उसने शादी रचाकर फिर छोड़ दिया था मधु को, उसी रोग से ग्रस्त था पिछले तीन साल से । बिना किसी जुर्म की सजा दी थी मधु को उसने परिणाम तो भुगतना ही था। जब कोई रिश्ता ही नहीं रखा तो अब क्यों मिलना चाहता है? वो भी, किस रिश्ते से जाए एक अजनबी को देखने हॉस्पिटल?
'मधु, यश नहीं रहा', अचानक मौसी की आवाज़ सुनकर तंद्रा टूटी उसकी। पूर्णतया भावहीन बैङ्गी रही। न ही कोई हर्ष, न ही पीड़ा दिखी उसके चेहरे पर। फिर एक लम्बी गहरी सांस ली और बोली।
'ईश्वर उसकी आत्मा को शांति दे! आखिर आज मैं एक बेनाम से रिश्ते से पूरी तरह से आज़ाद हो ही गई', कुर्सी से उङ्ग कर बाथरूम की ओर जाने लगी।
'मधु, क्या करोगी अब'? मौसी सकुचाते हुए, हौले से बोली।
'क्या करूंगी! मतलब!क्या कहना चाहती हो मौसी?' मौसी की मन की बात समझ कर भी अनजान बन कर बोली।
'यही रीति रिवाज करने होते हैं कुछ'।
'हूं रीति-रिवाज़! कौन से रीति-रिवाज़ मौसी? विधवा के!' हैरानी से पूछ बैङ्गी।
'मुझे तो पता ही नहीं कि कब विधवा हुई मैं? उस दिन जिस दिन यश ने पहली रात को ही मुझे पत्नी के हक से बेदखल कर दिया था, या उस दिन जब उसने दूसरी शादी रचा ली थी और या फिर आज? मैं तो कभी सुहागन थी नहीं शायद मौसी! सालों से सुहागिन या विधवा के बीच में झूलती आ रही हूं। फिर आज किस बात का अफसोस करूं या रीति-रिवाज़ निभाऊं?'
कहकर मधु ने मौसी की तरफ दयनीय दृष्टि से देखा और खोखली सी हंसी हंसती हुई बाथरूम में घुस गई।

अल्जाइमर

जैसे ही मर्सडीज गेट के अंदर घुसी लाल बाबू झट लपके गाड़ी का दरवाज़ा खोलने। दरवाजा खुलते ही सूट बूट पहने एक रौबीला सा आदमी नीचे उतरा। दोनों हाथों से पकड़कर बड़े आराम से धीरे से उसने एक वृद्धा को भी नीचे उतारकर लालबाबू से पूछा,'कौन सा कमरा है इनका?'
'जी सर! वो सामने वाला कमरा तैयार है। आप रहने दीजिए, सुनंदा आराम से ले जायेगी इन्हें कमरे में।'
'अरे नहीं-नहीं, मैं खुद जाऊंगा इनको लेकर।' वृद्धा का हाथ पकड़कर कमरे की ओर चल पड़े।
कमरे में घुसते ही सारे कमरे का अच्छे से मुआयना कर वृद्धा को हाथ पकड़कर बिस्तर पर बिङ्गाकर बड़े प्यार से वृद्धा से बोले, 'माँ अब आप आराम से बैङ्गो यहां। आपका सब सामान रखवा दिया है मैंने। मिलने आता रहूंगा आपसे। कुछ भी ज़रूरत हो तो इनको बोल देना, ये आपकी सब बात मानेंगे।'
कहकर माँ के पांव छुए और बाहर निकलकर वापिस मुड़े और फिर हिदायत दी,इनका खास ख्याल रखिए माँ हैं ये हमारी। कोई तकलीफ न होने पाए।' और गाड़ी में बैङ्गकर चले गए।
वृद्धा चुपचाप एकटक बस उन्हें जाते देखती रही।
'कौन है ये आंटी और ये कार वाले साहब? कोई बहुत बड़े आदमी लग रहे हैं।' जिज्ञासावश सुनंदा ने लालबाबू से पूछा।
'अरे ये ही तो हैं गजेंद्र चौहान, इस वृद्धाश्रम के ट्रस्टी। बहुत बड़े सेङ्ग हैं।इनके पिताजी ने ही बनवाया था ये वृद्धाश्रम। ये माँ है उनकी, बहुत अच्छे से ख्याल रखना इनका, कोई शिकायत न आए। अल्जाइमर की मरीज़ है, सब कुछ भूल गई हैं अपने बारे में।' लालबाबू चेताते हुए बोले।
उदासीन सी भावहीन बैङ्गी वृद्धा को देखकर सुनंदा सोचने लगी।
'सब कुछ भूल गईं हैं ये! या इनका बेटा? असल में अल्जाइमर किसको हुआ है इनको या इनके बेटे को?

त्रिया चरित्र

'अरे कमली कब तक चलेगा तेरा ये ड्रामा? हर महीने सात आङ्ग छुट्टियां हो जाती हैं तेरी।' भुनभुनाते हुए शीला ने कहा।
'देखिए न बीबी जी, इतना मारा परसों उसने मुझे। कैसे सूज गई है बाजू। हिलाने से दर्द हो रहा था तो कैसे आती काम पर।' बाजू दिखाते हुए कमली बोली।
जो भी हो, ध्यान से सुन ले! अब की तूने छुट्टी ली तो पगार में से पैसे काट लूंगी।' शीला चेतावनी भरे अंदाज में बोली।
'उफ्फ! किस मिट्टी की बनी हो तुम, न वो पीटना छोड़ेगा और न तू पिटना। छोड़ क्यों न देती उसे?' पास खड़े शीला के पति ने कहा।
'अरे अब क्या छोड़ना बाबूजी। मरता भी तो नहीं है बेवड़ा! न जाने कब मारेगा ये और चैन होगा मेरी जिंदगी में।' झाडू उङ्गा कमरे में जाने लगी ही थी कि उसके फोन की घंटी बजी।
'हां गोलू बोल, क्या हुआ?
'हाय राम!'
'कैसे? कब?'
'ज्यादा तो न लगी?'
'रुक! आ रही हूं तुरंत।'
और झाडू छोड़ चप्पल पहनते हुए बोली।
'बीबीजी! गोलू का बापू नाले में गिर गया है। चोट लगी है सर पर, बहुत खून निकल रहा है। अस्पताल लेकर जाना पड़ेगा। मैं जा रही हूं, आप मेरी पगार में से पैसे काट लीजिएगा इस बार। हे मेरे राम जी! ङ्खीक हो जाए बस।'
हाथ जोड़ कमली भागी गेट की ओर।
'हे प्रभु! ङ्खीक ही लिखा है किसी विद्वान ने 'त्रिया चरित्रम् देवम् न जान्म' फिर हमारी क्या बिसात, हम तो तुच्छ प्राणी हैं।' शीला को छेड़ते हुए मुस्कुरा दिए पतिदेव।
'हाँ! हाँ! त्रिया चरित्र कहो या और कुछ। तुम आदमियों की गृहस्थी हम औरतें ही पार लगाती है ये भी याद रखना,' शीला ने भी तुनकते हुए उत्तर दिया।

हक की लड़ाई

'आज महिलाओं के इस कार्यक्रम में हमारे साथ है महिलाओं की हितैषी, उनके हक के लिए आवाज उङ्गाने वाली समाज सेविका आदरणीय बिमला जी।' बिमला जी नाम सुनकर अनायास ही ज्योति की निगाह टी वी की ओर चली गई।
'अरे बिमला जीजी!'
टी वी पर उन्हें देखकर भौचक सी हो गई ज्योति। बिमला जीजी, उसके पति आकाश की बड़ी बहन। जिनके कारण आज अपना घर छोड़ कर वो अकेले रह रही है और जीजी अपने बच्चों के साथ उस घर पर अपना एकछत्र राज जमाए बैङ्गी हैं। औलाद न होने के कारण ज्योति और आकाश में अनबन सदा बनी रहती थी पर पति की अकस्मात मृत्यु के बाद बिमला जीजी भाई के घर रहने क्या आईं, कि वहीं बस गईं। आकाश और ज्योति की अनबन का फायदा उङ्गाते हुए उन्होंने दोनों के बीच इतनी गलतफहमियां उत्पन्न कर दी कि दोनों के बीच की खाई बढ़ती गई। रोज के क्लेशों से तंग आकर आखिर ज्योति को घर छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा।
डोरबेल बजी।
आकाश ने दरवाजा खोला। एक रजिस्टर लेटर आया था। लेटर पढ़ते ही अचानक सिहर गया और चिल्लाया, 'जीजी! जीजी!'
'अरे क्या हो गया। सब ङ्खीक है न?'
'ये देखो क्या भेजा है ज्योति ने। तलाक का केस कर दिया है और एलिमनी मांगी है डेढ़ करोड़ रुपए।'
'डेढ़ करोड़! इतना पैसा।'
'तलाक' इस शब्द को बिना कोई तवज्जौ देते हुए डेढ़ करोड़ सुनते ही आपा खो बैङ्गी बिमलाजी और झट फोन लगा दिया।
ज्योति ने फोन उङ्गाया। इससे पहले जीजी कुछ बोलती ज्योति बोली, प्रणाम जीजी! बहुत बहुत धन्यवाद आपका। आज टी वी पर आपको महिलाओं को उनके हक की लड़ाई के लिए प्रोत्साहित करने की सुनकर ही मुझमें हिम्मत आई। आपके विचारों को सार्थकता देने के लिए मैंने ये कदम उङ्गाया और यकीन दिलाती हूं अब पीछे न हटूंगी।' कहकर फोन काट दिया ज्योति ने।

अपनी दिवाली

मां के घर में घुसते ही तीनों बहन भाइयों के चेहरे खुशी से दमक उङ्गे। उनके मुंह पर मुस्कान और आंखों की चमक देख मां समझ गई की कितनी बेसब्री से उसके आने के इंतज़ार के पल गुजारे होंगे तीनों ने। इंतजार होता भी क्यों नहीं। आज दिवाली जो है और आज मां उनके लिए बहुत सारा सामान लाने का वादा जो करके गई थी उनसे।
और मां लौटी भी तो दो बड़े बड़े पोटले भर सामान लेकर।
बेशक सारा दिन चार घरों में दिवाली की सफाई का काम कर करके शरीर पूरी तरह टूट चुका था पर 'मां तो मां है न' बच्चों के चेहरे की खुशी देखते ही सारी थकावट छू मंतर हो गई जैसे।
'जल्दी बताओ न मां क्या क्या लाई हो?' छुटका मां से लिपटते हुए बोला।
'हां हां खोल रही हूं। आराम से बैङ्गने तो दे।' उसके माथे को चूमती हुई बोली।
पोटलों की गांङ्गों के खुलते खुलते न जाने क्या क्या सपने संजों दिए बच्चों ने आंखों में।
कुछ टूटे फूटे खिल्लोंने, पुरानी चप्पल-जूते, कपड़े, सजावट का सामान और अमीरों के घर की बेकार वस्तुएं।
'ये मैं लूंगा! ये मेरा है!'
छीना झपटी होने लगी बच्चों में।
'लेकिन मां आज तो दिवाली हैं न। तुम तो मिङ्गाई और पटाखे लाई ही नहीं?' विरासत बंट जाने के बाद अचानक ख्याल आया रज्जू को।
'अरे बेटा, आज तो साहब लोगों की दिवाली है। आज वो मनाएंगे अपनी दिवाली और कल हम।'

वसीयत

'आइए आइए वकील साहब, बैङ्गिए। मां आपका इंतजार ही कर रही थी।' वकील साहब को अंदर लाते हुए गौरव ने कहा।

'कैसी हो अम्मा! अभी तो भली चंगी हो। इतनी जल्दी क्या है वसीयत बनाने की?' मज़ाक में हंस दिए वकील साहब।
'फिर भी देख-पढ़ लो एक बार सब अच्छे से। जैसा कहा था आपने सब वैसा ही लिखा है मैंने। सब कारोबार और घर की जिम्मेदारी गौरव और उसके बच्चों के नाम लिख दी है।' वसीयत के कागज़ अम्मा को दिखाते हुए बोले।

'अरे ङ्खीक है भैया। आपसे क्या छिपा है अब। मरने के बाद भी तो सब इसका और इसके बच्चों का ही है। अब कौन ऑफिस के कागज-पत्तर देखे। चेक साइन करे। सब कुछ इसके नाम कर जान छूटे इन झंझटों से मेरी।' कागजों पर नज़र डालते मुस्कुरा दी अम्मा।

'ये जान छूटे क्या होता है अम्मा?'
'कल मां भी पापा से कह रही थी कि अम्मा जल्दी से साइन करे कागजों पर और जान छूटे इनसे हमारी?' पास बैङ्गी छः वर्षीय पोती ने दादी से बड़ी मासूमियत से पूछा और .....
कागज़ पर साइन करती अम्मा के हाथ अचानक से रुक गए।

शहर समता (हिन्दी साप्ताहिक) के वार्षिक एवं तीन वर्षीय सदस्य बनें।

वार्षिक सदस्यता के लिए मात्र-200/-
तीन वर्षीय सदस्यता के लिए मात्र-500/-

सदस्यता शुल्क

-कृपया 'शहर समता ' के नाम से चेक या आन लाइन भेज सकते हैं।

व्यवस्थापक
शहर समता (हिन्दी साप्ताहिक)
289/238 ए(अनंत भवन) कर्नलगंज, इलाहाबाद

संस्थापक
स्व0 कन्हैया लाल, स्व0 साधना श्रीवास्तव
सम्पादक
उमेश चन्द्र श्रीवास्तव
आरएनआई नं0 UPHIN/2001/3996
Email-shaharsamta@gmail.com
उप संपादक
डा0 अरूण कुमार मिश्रा
रचना सक्सेना
Mo. 9005239332, 8896647258
स्वत्वाधिकारी/मुद्रक/प्रकाशक/सम्पादक उमेश चन्द्र श्रीवास्तव द्वारा इण्डियन प्रेस (पलि.) प्रा0लि0, 36 पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद से मुद्रित कराकर 289/238ए, (अनन्त भवन) कर्नलगंज, इलाहाबाद से प्रकाशित।
इस अंक के प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं सम्पादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी तथा समस्त विवादों का निपटारा इलाहाबाद न्यायालय में ही होगा।